International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 308-310

वर्तमान सन्दर्भ में साहित्य और समाज में नारी की भूमिका

नीलम कुमारी
शोधार्थी (हिन्दी–विभाग), एम.डी.यू., रोहतक, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

नारी का सम्मान करना एवं उसके हितों की रक्षा करना हमारे देश की सदियों पुरानी संस्कृति रही है। यह एक विडम्बना ही है कि भारतीय समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त विरोधाभासी रही है। एक तरफ तो उसे शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया तो दूसरी तरफ उसे 'बेचारी अबला' भी कहा जाता है। इन दोनों ही अतिवादी धाराणाओं ने नारी के स्वतन्त्र विकास में बाधा पहुंचाई है। प्राचीनकाल से ही नारी को इन्सान के रूप में देखने के प्रयास सम्भवतः कम ही हुए हैं। पुरूष के बराबर स्थान एवं अधिकारों की मांग ने भी उसे अत्यधिक छला है। अतः वह आज तक मानवी का स्थान प्राप्त करने से भी वंचित रही है।

चिन्तनात्मक विकास : सदियों से ही भारतीय समाज में नारी की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उसी के बलबूते पर भारतीय समाज खड़ा है। नारी ने भिन्न भिन्न रूपों में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । चाहे वह सीता हो, झांसी की रानी हो, इन्दिरा गांधी हो, सरोजनी नायडू हो। किन्तु फिर भी वह सदियों से क्रूर समाज के अत्याचारों एंव शोषण का शिकार होती आई है। उसके हितों की रक्षा करने के लिए एवं समानता तथा न्याय दिलाने के लिए संविधान में आरक्षण की व्यवस्था की गई है। महिला विकास के लिए आज विश्वभर 'महिला दिवस' मनाए जा रहे हैं। ससंद में 33 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है। इतना सब होने पर भी वह प्रतिदिन अत्याचारों एवं शोषण का शिकार हो रही है। मानवीय क्रूरता एवं हिंसा से ग्रसित है। यद्यपि वह शिक्षित है हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है तथापि आवश्यकता इस बात की है कि उसे वास्तव में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय प्रदान किया जाए। समाज का भी चहुंमुखी विकास तभी सम्भव होगा जब नारी अपनी अस्तिमा एवं अस्तित्व को पूर्णतः सम्मान के साथ प्राप्त कर सके।

भारत में शताब्दियों की पराधीनता के कारण महिलाएं अभी तक समाज में पूरी तरह वह स्थान प्राप्त नही कर सकी है जो उन्हे मिलना चाहिए और जहां दहेज की वजह से कितनी ही बहू बेटियों को जान से हाथ धाने पड़ते हैं तथा बलात्कार आदि की घटनाएं भी होती रहती हैं, वहीं हमारी सभ्यता और सांस्कृतिक परम्पराओं और शिक्षा के प्रसार तथा नित्यप्रति बढ़ रही जागरूकता के कारण भारत की नारी आज भी दुनिया की महिलाओं से आगे है और पुरूषों के साथ हर क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर देश और समाज की प्रगति में अपना सहयोग दे रही है।

सदियों से समय की धार पर चलती हुई नारी अनेक विडम्बनाओं और विसंगतियों के बीच जीती रही है। पूज्य, भोग्य, सहचरी, सहधर्मिणी, मां, बहन एवं अर्धागिनी इन सभी रूपों में उसका शोषित और दमित स्वरूप। वैदिक काल में अपनी विद्वता के लिए सम्मान पाने वाली नारी मुगलकाल में रनिवासों की शोभा बन कर रह गई। लेकिन उसके संघर्षो से उसकी योग्यता से बन्धनों की कड़िया चरमरा गई। उसकी क्षमताओं को पुरूष प्रधान समाज रोक नही पाया। उसने स्वतन्त्रता संग्राम सरीखे आन्दोलनों में कमर कस कर भाग लिया ओर स्वतन्त्रता प्राप्त के पश्चात संविधान में बराबरी का हिस्सा पाया। रामराज्य से लेकर आज तक लम्बा संघर्षमय सफर किया है नारी ने। कई समाज सुधारकों आन्दोलनों और सगंठनों द्वारा उठाई आवाजों के प्रयासों से यहां तक पहुंची है नारी। जीवन के हर क्षेत्र में पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली नारी की सामाजिक स्थिति में फिर भी परिवर्तन 'ना' के बराबर हुआ है। घर बाहर दोहरी जिम्मेदारी निभाने वाली महिलाओं से यह पुरूष प्रधान समाज चाहता है कि वह अपने को पुरूषों के सामने दूसरे दर्जे पर समझे।

आज की संघर्षशील नारी इन परस्पर विरोधी अपेक्षाओं को आसानी से नही स्वीकारती। आज की नारी के सामने जब सीता या गन्धारी के आदर्शों का उदाहरण दिया जाता है तब वह इन चरित्रों के हर पहलू को ज्यों का त्यों स्वीकारने में असमर्थ रहती है। देश, काल, परिवेश और आवश्यकताओं का व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्व है। समाज इनसे प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। सीता के समय के और इस समय के सामाजिक परिवेश में धरती आसमान का अन्तर है। समाज सेविका श्रीमती ज्योत्सना बतरा का कहना है कि 'आज के परिवेश में सीता बनना बड़ा कठिन है। सीता स्वंय में एक फिलोसफी थी। उनका जन्म मानव जाति को मानव–मूल्यों को समझने के लिए हुआ था। दूसरे के लिए आदर्श बनने के लिए व्यक्ति को स्वंय बहुत त्याग करने पड़ते हैं जैसे सीता ने किए। राम और सीता ने अपना जीवन दूसरों के लिए जिया है। राम जानते थे कि धोबी द्वारा किया गया दोषारोपण गलत है, मिथ्या है परन्तु उन्होने उसका प्रतिरोध न करके प्रजा की सन्तुष्टि के लिए सीता का त्याग कर दिया। राम की मर्यादा पर कोई आंच न आए प्रजा उन पर उंगली न उठाए यह सोच कर सीता ने पति द्वारा दिए गए बनवास को स्वीकार किया और वाल्मीकि के आश्रम में रहने लगी। अब न राम सरीखे शासक है न वाल्मीकि समान गुरू। हम सभी जानते हैं कि सीता के जीवन का सम्पूर्ण आनन्द पति में ही केन्द्रित था। पति की सहचरी बनी वह चित्रकुट की कुटिया में भी राजभवन सा सुख पाती थी।

"मेरी कुटिया में राजभावन मन भाया।"

सीता का यह कथन अपने पति श्री राम के प्रति उनकी अगाध आस्था को दर्शाता है। सीता अपना और राम का जन्म जन्म का नाता मानती थी। आज भी भारतीय नारी पति के साथ अपना जन्म जन्म का नाता मानती है।

युगदृष्टता, युगसृष्टता नारियों के चरित्र हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं। हम उनके चरित्र के मूल तत्वों का समावेश अपनी जिन्दगी में

कर सकते हैं। श्रीमती डा. आशा शाहिद के अनुसार– "लगभग चौबीस वर्षों से मैं अमरीका में रह रही हूं। हमने अपनी एक मात्र बेटी में भारतीय मूल के संस्कार डाले हैं उसे रामायण व सीता के चरित्र से अवगत कराया है।"

यों तो सीता धरती पुत्री थी शिवजी के भारी भरकम धनुष को सरका कर उन्होने अपने शक्ति का परिचय दिया था पर अग्नि परीक्षा.....? आज के समय में अच्छी शिक्षा पाना, अच्छी नौकरी पाना, दफतरों की राजनीति का शिकार न बनना, अपने घर और दफतरों की जिम्मेदारयिां अच्छी तरह निभाना ये किसी अग्नि परीक्षा से कम है? हर हाल में पति का साथ देने को उत्सुक सीता के चरित्र की यह विशेषता थी। डा. मनीषा देशपाण्डे के अनुसार "सीता का उदाहरण पतिव्रताओं में सर्वोपरि है। इसमें सन्देह नही कि वह कठिनाई के समय में पति का मनोबल बढ़ाने, विवाह के समय लिए गए वचनों को निभाने उनकी सहचरी बन उनके साथ वनों को गई।"

जब हम सीता के बारे में सोचते हैं तो एक बात हमारे दिमाग में आती है वह है हमारी सामाजिक परिस्थतियों में राम राज्य से अब तक बदलाव, उस समय की नारी को प्रतिव्रता और कर्तव्य परायण जरूर होना चाहिए था। सीता इन गुणों पर खरी उतरती थी। वह एक सुपर वूमैन थी। फिर भी सीता की पहचान अपने पति व बच्चों के कारण थी। जैसे राम की पत्नी, लवकुश की मां। उनकी पूरी जिन्दगी उनके परिवार के इर्द गिर्द ही सीमित रह गई। वह समाज की अपेक्षाओं को पूरा करती रही। सीता के चरित्र की बहुत सी बातें हम पसंद करते हैं जैसे पति को सपोर्ट करना। वह दृढ़ चरित्र की महिला थी।

नैसर्गिक रूप से तो स्त्री पुरूष एक दूसरे के पूरक है हीं। जिस आधुनिक लोकतान्त्रिक समाज मनुष्य अपने व्यक्तित्व की नयी उंचाईयां छू रहा है उसके निर्माण में भी स्त्री की भूमिका दूसरे दर्जे की नही मानी जा सकती। हमारे अपने देश में भी जब से देश के आधुनिक राष्ट्र में परिवर्तित की प्रक्रिया आरम्भ होती है तभी से हम स्त्रियों को सामाजिक, राजनीति प्रक्रियाओं में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। यह और बात है कि जब इन प्रक्रियाओं को इतिहास या राष्ट्रीय माइयालोजी का रूप दिया जाता है, तब स्त्रियों को केवल 'पुरूषों की प्ररेणा' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है या फिर अधिक से अधिक ऐसी वीरांगनाओं के रूप में जिन्हे परिस्थितिगत पराक्रम के लिए बाध्य कर देती है। सामाजिक, राजनीतिक विवेक और इतिहास बोध पर भी स्त्री का कोई दावा हो सकता है, यह आम तौर से राष्ट्रीय वृतांतों में स्वीकार नही किया जाता है। भारत के पहले स्वाधीनता संग्राम 1857 के दो उदाहरणों से यह बात समझी जा सकती है। महारानी लक्ष्मीबाई, कुशल प्रशासक और नेता थी, लेकिन उनकी मुख्य छवि हमारा राष्ट्रीय वृतांत एक युद्धरत वीरांगना का ही बनाता है। अवध की बेगम हजरतमहल के बारे में तो हम सिवा इसके कुछ याद नही करते कि वह भी 1857 के नेताओं में से एक थी, जबकि बेगम हजरतमहल वह व्यक्ति थी जिन्होने विक्टोरिया की 'गदर' के बाद जारी की गई घोषणा का प्रतिवाद विद्रोही पक्ष की ओर से जारी किया था। लक्ष्मीबाई हो या हजरतमहल, मोतीबाई हो या अलकाजी ये स्त्रियां अपवाद नही थी, बल्कि उस दौरे की सामान्य राजनीतिक चेतना से ही इनके व्यक्तित्व परिभाषित होते थे। 1857–58 के दमन के बाद राजनीतिक चेतना को जो उभार आया, उसका सामाजिक आधार नए विकसित हो रहे मध्य वर्ग में था।

इस उभार में लम्बे अरसे तक स्त्री की स्थिति प्रतीकात्मक बनी रही। इस बात को अच्छी तरह समझने की जरूरत है। जिस विद्रोह (1857) की जड़े परम्परा में थी, उसमें स्त्री की सांझेदारी लगभग बराबर की थी। यह इस बात का एक प्रमाण है कि भारतीय समाज में प्रगति और जड़ता का द्वन्द्व परम्परा बनाम आधुनिकता के द्वन्द्व का पयार्यवाची नही है। परम्परा में निहित जड़ता प्रगतिहीनता और अमानवीयता के पहलू तो अपनी जगह है ही, लेकिन आधुनिकता में भी सब कुछ गतिशील प्रगतिशील हो, ऐसा नही है। उल्टे हमारे समाज में आयी आधुनिकता के सामाजिक आधार और उसके बौद्धिक स्त्रोतों की बदौलत उस आधुनिकता का दक्षिणपंथी, प्रक्रियावादी पहलू उसके प्रगतिशील पहलू से कहीं अधिक प्रचण्ड है। जातिवाद विरोध के नाम पर स्वर्ण जातिवाद की बेशर्म वकालत हो या सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नाम पर फासिस्ट मिजाज की चट्टानी संवेदनहीनता–ऐसी तमाम समाज तोड़क और पीछे देखूं प्रवृतियों का सामाजिक आधार और बौद्धिक तेज हमारे परम आधुनिक भद्रलोक द्वारा ही सप्लाई किया जाता है।

भारतीय आधुनिकता की उपरोक्त तीखी आलोचना की तार्किक परिणिती यह नही है कि आप भारत व्याकुलता के मरीज बनकर परम्परा का अंधाधुध महिमा मंडन करने लगे। पक्ष और प्रतिपक्ष के रूप में परम्परा और आधुनिकता को नही बल्कि प्रगति और जड़ता, मुक्ति और बंधन को देखना चाहिए। तभी समाज में वह आलोचनात्मक विवेक उत्पन्न होगा, जो हमारे व्यक्तिगत और समाजगत कार्यकर्ताओं की नैतिक कसौटी पर काम कर सके। इस पृष्ठभूमि के साथ हम यह कड़वी सच्चाई याद करें कि पारंपरिक हो या आधुनिक, संसार की सभी सभ्यताएं स्त्री की दृष्टि से ओच्छी प्रतीत होती है और पाखण्डी भी।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' के दावेदार हो या स्त्री को गुलामी से आजाद कर शरीके हयात बनाने के दावेदार अपनी आत्मा में झां कर देखें तो समझ जाऐंगे कि स्त्री को 'देवी' बनाने के सभी प्रोजैक्ट असल में उसे व्यक्तित्व से वंचित करने के प्रोजैक्ट है। स्त्री की आत्म सजगता का आरम्भ ही इस देवी मार्का छल से मुक्त होकर व्यक्तित्व तलाशने की बेचैनी से होता है। किसी आत्मा सजगता की कोशिशों की रेखाएं आधुनिक सभ्यता में तो है ही पारम्परिक सभ्यताओं में भी है। ऐसी कोशिशों की तार्किक परिणीति होनी चाहिए, सामाजिक, राजनीति सतातन्त्र में स्त्री व्यक्तित्व की बराबर की हैसियत तक सहज, स्वाभाविक अधिकार के रूप में किसी की कृपा के रूप में नही। आजादी के आन्दोलन को जब बांधी जी ने मध्यवर्ग के चंगुल से मुक्त कराकर आम जनता को आन्दोलन बनाया तो उन्होने उसमें स्त्रियों की हिस्सेदारी को भी प्रतीकात्मक की बजाय वास्तविक बनाने पर खास ध्यान दिया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार से लेकर सिविल नाफरमानी तक के कार्यक्रमों में स्त्रियों की सक्रिय हिस्सेदारी गांधी जी नेतृत्व क्षमता और दूरदर्शिता के साथ उनकी गहरी सामाजिक अंतदृष्टि को भी प्रमाणित करती है। इस तरह की हिस्सेदारी ने न केवल स्त्रियों के व्यक्तित्व के संघर्ष को धार दी, बल्कि स्वाधीनता आन्दोलन को राजनीतिक क्षेत्र से बाहर लाकर सामाजिक, सांस्कृतिक चुनौतियों से भी जोड़ दिया। इस स्थिति का अपेक्षित नैतिक प्रभाव होना तो यह चाहिए था कि बिना किसी बाध्यकारी व्यवस्था के स्त्रियों और समाज के दूसरे उत्पीड़ित तबकों को उनकी वाजिब हैसियत हो जाती लेकिन चीजें अगर सिर्फ नैतिक बल और हृदय परिवर्तन से ही संभव होती तो राज्यसता की किसी भी तरह के अनुशासन की या आन्दोलन की जरूरत ही क्या थी? इसीलिए स्त्री के सबलीकरण और लैंगिक न्याय की प्रक्रियाएं केवल सदस्यता के भरोसे नही छोड़ी जा सकती। वर्तमान भारतीय समाज में स्थितियां एवं परिस्थितियां परिवर्तित हो चुकी हैं। प्राचीन से मध्यकाल तक यद्यपि भारतीय नारी ने समाज की सुदृढ़ता प्रदान की किन्तु फिर भी उस समय वह शोषण एवं अत्याचारों से मुक्त नही हुई थी। शायद उसकी

नियति ही यही रही है। आज हम नारी जागृति, नारी सम्मान की बात करते हैं। बड़े अधिकारी नेतागण, अन्य सभी बुद्धिजीवी लोग सभाओं, सेमीनारों एवं मंचों पर नारी के समान अधिकार, महिला उत्पीड़न के मुद्दों पर लछेदार भाषण झाड़ते हैं। लेकिन इस पुरूष प्रधान समाज का नारी के प्रति वास्तविक नजरिया कुछ और ही होता है।

हमारे देश में जहां महिला प्रधानमन्त्री रह चुकी हो। जहां की लड़कियां माउंट एवरेस्ट पर विजय पा चुकी हों वहां महिला और पुरूष के बीच का विरोधाभास और भी निंदनीय है। इस देश में हमेशा स्त्री को मां, बहन या फिर बेटी के रूप में देखा गया है, फिर भी इतिहास गवाह है कि पारम्परिक और सामाजिक दृष्टिकोण से स्त्रियों की उपेक्षा की गई है। मानव समाज की सबसे पुरानी और सबसे व्यापक गलतियों में से एक मुख्य गलती यह है कि आज तक भारतीय नारी के साथ समानता व न्याय का व्यवहार नही हुआ है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान के विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से यह सुनिश्चित करने का निश्चय किया कि सभी को सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक न्याय प्राप्त हो सके। ताकि प्रत्येक भारतवासी को स्वतन्त्रता के साथ साथ अवसर की समानता का आनन्द भी मिल सके। इसलिए भारत के संविधान की उदेशिका मूल अधिकारों तथा राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में ऐसे प्रावधान किए गए जिसमें महिलाओं, अल्पसंख्यकों और समाज के निर्बल वर्गो को आगे आने का अवसर मिल सके ताकि वे भी देश की मुख्य धारा से जुड़ सकें।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में महिलाओं ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया तथा अनेक यातनाएं एवं अत्याचार सहे थे। इसलिए संविधान निर्माताओं ने यह जरूरी समझा कि राष्ट्र को मजबूत, संगठित एवं प्रगतिशील बनाने के लिए महिलाओं, युवतियों एवं बच्चों की सुरक्षा, सरंक्षण एवं उन्नति के लिए विशेष व्यवस्था की जाए, ताकि उनका पिछड़ापन समाप्त हो सके। महिलाओं को मताधिकार एवं सरकार में भागीदारी का अधिकार अनेक देशों विशेषकर इस्लामिक देशों की महिलाओं को पहले से प्राप्त था। केवल सामाजिक समानता के क्षेत्र में महिलाओं और बालकियों को आवश्यक पर्याप्त एवं प्रभावी समानता प्राप्त नही हो सकी है। दूसरी और महिलाओं के विरूद्ध अत्याचार एवं अपराधों में निरन्तर वृद्धि हो रही है जो कि चिन्ता का विषय है। यह स्थिति तब और शाचेनीय हो जाती है।

आज जरूरत है नारी को समय की मुख्यधारा से जोड़ने की। आज की नारी ममतामयी है। त्यागमयी है। नारी त्याग और साधना के बलबूते पर समाज के प्रत्येक पहलू से जुड़ी है। वह पढ़ी लिखी है। आत्मनिर्भर है अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सचेत है। संघर्षरत है। यद्यपि नारी शिक्षा से आज कामकाजी महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है। हमारे समाज में उसकी निस्वार्थ सेवा हर क्षेत्र में है तथापि वह नौकरी पेशा न होकर गृहिणी होते हुए भी घरेलू दायित्वों का निर्वाह निष्ठापूर्वक करती है। किन्तु फिर भी उन्हे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कामकाजी महिलाएं तो दोहरे स्तर पर पारिवारिक और सामाजिक शोषण का शिकार है। जैसे–जैसे समय आगे बढ़ रहा है वैसे–वैसे भारतीय नारी के भी कदम आगे बढ़ रहे हैं। आज वह 'देवी' नही बनना चाहती, वह सही और सच्चे अर्थों में अच्छा इन्सान बनना चाहती है। नैतिक मूल्यों और मानवीय मूल्यों को नकारा नही जा सकता। हमारे पारम्परिक चरित्र नैतिक मूल्यों की धरोहर है। आज की जुझारू महिला का व्यक्तित्व उसकी कार्यक्षमता में झलकता है और आज की संघर्षशील नारी को एक नही कई अग्नि परीक्षाएं देनी पड़ती है।

अब समय आ गया है कि महिलाओं को अधिकार देने तथा उन्हे लैंगिक भेदभाव से मुक्ति दिलाने के मार्ग में आने वाली बाधाओं तथा अन्य खामियों पर भी विचार किया जाए। इस बात को समझ लेना चाहिए कि केवल साधनों की उपलब्धि तथा महिलाओं की उन तक पहुंच से वंचित लक्ष्यों की प्राप्ति नही हो पाएगी बल्कि इस सबके लिए जरूरी है कि लोगों की सोच में एक व्यापक परिवर्तन लाया जाए। विशेषकर पुरूषों की सोच में परिवर्तन की व्यापक रूप से आवश्यकता है। पुरूषों को भी इस बात के लिए मनाना होगा कि वे अपने कुछ विशेषाधिकारों को त्यागें जिसमें महिलाओं को लाभ प्राप्त हो सके। विशेषज्ञों ने इस बात को पाया है कि महिलाओं की पराश्रयता उनका शोषण तथा समाज की गतिविधियों में उनकी सीमित सहभागिता का कारण महिलाओं की अपनी अक्षमता अथवा इस क्षेत्र में आगे न बढने देने का पुरूषों का षडयन्त्र नही है। इसके अतिरिक्त हमारे समाज की अपनी कुछ रीतियां है जो कि महिलाओं के प्रति भेदभाव को बढ़ाती है। इनमें दहेज प्रथा, लड़के के जन्म पर समारोह तथा लड़की के जन्म पर अप्रसन्नता व्यक्त करना, पर्दा प्रथा, गर्भस्थ शिशुओं का लिंग परीक्षण तथा बालिका भ्रूणों का गर्भपात, लड़के के लिए ईलाज तथा अन्य उपचार आदि नैतिकता चरित्र के बारे में महिलाओं और पुरूषों के प्रति दोहरे मानदण्ड, महिलाओं और लड़कियों के लिए अनेक सामाजिक वर्जनाएं तथा पुरूषों के लिए स्वछन्ता आदि शामिल है। इसके अलावा महिलाओं से कई अन्य क्षेत्रों में भी भेदभाव होता है। भले ही कानून इस प्रकार के भेदभाव को वर्जित करता है। रोजगार व सम्पति के अधिकार में इस प्रकार का भेदभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इसी प्रकार रोजगार के क्षेत्र में महिलाओं को समान अवसर दिए जाने की बात कही जाती है लेकिन वास्तविकता यह है कि वहां भी उनसे भेदभाव होता है। ऐसे भी कई अवसर आते हैं जहां उनका कई तरीकों से शोषण होता है। लेकिन इस बारे में दुख की बात यह है कि इन शोषणों के प्रति कोई व्यवस्था सक्रिय नही है। महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए अतीत में जिस प्रकार के समाज सुधार आन्दोलन हुए थे, वैसे ही आन्दोलनों की आज भी जरूरत है। समाज के निष्ठावान उत्साही लोगों को इस दिशा में अथक प्रयास करने चाहिएं ताकि नारी को समाज में सम्मानित दर्जा प्राप्त हो सके।

संदर्भ

1. आशारानी व्योहरा, भारतीय नारीः दषा और दिषा, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली 1983
2. एम.ए. अंसारी, राष्ट्रीय महिला आयोग ज्योति प्रकाशन, जयपुर 2000
3. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड ड्रिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली 2000
4. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्री– अस्मिता साहित्य और विचारधारा, आनंद प्रकाशन 2000
5. नीरा देसाई, भारतीय समाज में नारी, मैकमिलन इन्डिया लि0, दिल्ली 1982
6. प्रीति मिश्रा, हिन्दू महिलाओं के जीवन, आदित्य पब्लिशर्स दिल्ली 2001
7. राकेश कुमार, नारीवादी विमर्श, आकार प्रकाशन, हरियाणा 2001